ओ३म्

एक प्रति मूल्य : रु० 4.00

सन् 1923 में स्वामी श्रद्धानन्द जी द्वारा स्थापित

स्वामी श्रद्धानन्द

शुद्धि समाचार

पं. मदनमोहन मालवीय

भारतीय हिन्दू शुद्धि सभा का मासिक मुखपत्र

वर्ष 36 अंक 7

"शुद्धि ही हिन्दू जाति का जीवन है"

दूरभाष : 011-23847244

जुलाई, 2013 विक्रम सम्वत् 2070 आषाढ़-श्रावण

सनातन धर्मी नेता - पं. मदनमोहन मालवीय

वार्षिक शुल्क : 50 रुपये

आजीवन शुल्क : 300 रुपये

परामर्शदाता : श्री हरबंस लाल कोहली ☼ श्री विजय गुप्त ☼ श्री सुरेन्द्र गुप्त ☼

प्रबन्धक : श्री नरेन्द्र मोहन वलेचा

वेद में स्वराज्य की अवधारणा

– श्री गोपाल शरण 'विद्यार्थी'

स्वराज्य की अवधारणा इतनी ही व्यापक और सनातन है जितनी यह सृष्टि और सृष्टि के आदि में मनुष्य मात्र के हितार्थ परमेश्वर द्वारा दिया गया वेद ज्ञान। वस्तुतः स्वराज्य मानव मात्र का 'जन्म सिद्ध अधिकार' ही नहीं, 'ईश्वर प्रदत्त अधिकार' भी है। इसका अनुरक्षण और अर्चन उतना ही महत्वपूर्ण और मूल्यवान है, जितना मानव जीवन।

अन्य मतावलम्बियों की पवित्र पुस्तकों की तुलना में केवल 'वेद' ही एकमात्र प्राचीनतम ऐसी पुस्तक है, जो कहीं भी 'दासता' या गुलामी का पोषण नहीं करतीं, किसी भी प्राणी और किसी भी वर्ग, जाति, देश या राष्ट्र को दासता की बेड़ियों में जकड़ने को नहीं कहती। अपनी 'देह' और 'भूमि' पर अपना राज्य, अर्थात स्वराज्य हो, यही उदात्त भावना है 'देव' और 'वैदिक संस्कृति' की।

वेद और स्वराज्य

वेद 'स्वराज्य' का कितना बड़ा समर्थक और पोषक है, यह इसी से जाना जा सकता है, कि अनेक मन्त्रों में 'स्वराज्य' वा 'सुराज्य' की परिकल्पना के साथ साथ ऋग्वेद के प्रथम मण्डल का अस्सीवां सूक्त पूरे का पूरा स्वराज्य प्रतिपादक है। इस षोडशर्च सूक्त के सभी मन्त्रों में एक ही टेक है- 'अर्चन् अनु स्वराज्यम्'। स्वराज्य 'अनु', 'अर्चन्', यह केवल तीन शब्द ही नहीं, यह सूक्त के सारे मन्त्रों के प्राण हैं, क्योंकि इन में 'स्वराज्य का निरन्तर अनुकूल अर्चन करते हुये' जीवन यापन की प्रेरणा है। इस प्रकार 'सब सत्य विद्याओं की पुस्तक' वेद में स्वराज्य एक चिरन्तन सत्य है, जिसकी मूल भावना है 'आत्म शासन' और 'आत्म संयम'। 'आत्मवित्' और 'आत्म अनुशासित' ही वेद की दृष्टि में स्वराज्य का महत्व समझने में समर्थ होता है, और वही स्वराज्य का अर्चन करने का अधिकारी है। भ्रष्ट, चोर, लुटेरे, प्रपञ्ची, असंयमी, अपराधी वृति तथा संदिग्ध चरित्र वाले जन न तो 'स्वराज्य' का महत्व समझ सकते हैं, और न उसका स्वराज्य की भावना के अनुकूल निरन्तर अर्चन कर सकते हैं।

स्वराज्यार्थ पुरूषार्थ

वेद का आदेश है कि प्रत्येक स्त्री पुरुष आत्म ज्ञान और आत्म बल से पूरित होकर तथा एक मन होकर संगठित रूप से स्वराज्य के लिए निरन्तर प्रयत्न करें। इस सम्बन्ध में देखें वेद का यह मन्त्र –

आ यद्वामीयचक्षमा मित्र वयं च सूरयः।
व्यचिष्टे बहुपाय्ये यतेमहि स्वराज्ये।।

–ऋग. 5/66/6

मन्त्र में कहा गया कि (ईयचक्षसा) प्राप्तव्य ज्ञान से युक्त (मित्रः) मित्रजन (वाम) आप दोनों अर्थात् स्त्री पुरुष (सूरयः) विद्वान् (च) और (वयम्) हम सब मिलकर (स्वराज्ये) स्वराज्य के लिये (आ) सब ओर से (यतेमहि) यत्न करें (यद्) जो स्वराज्य (व्यचिष्ठे) अत्यन्त व्यापक तथा (बहुपाय्ये) बहुतों से रक्षा करने योग्य है। मन्त्र से स्पष्ट है कि अपनी भूमि पर स्वराज्य अर्थात् अपना राज्य तभी सही रूप में सम्भव है, जब–

(1) भूमि पर बसने वाले ज्ञान से युक्त हों। स्वराज्य की महत्ता और अपने दायित्वों को समझते हों।

(2) भूमि पर बसने वाले समस्त स्त्री पुरुषों में मित्रभाव अर्थात् परस्पर सहयोग की भावना हो।

(3) स्वराज्य के अनुरक्षण और अर्चन के लिये हर विषय के विद्वानों की प्रचुरता हो। मूर्ख, अज्ञानी और अविवेकी स्वराज्य को संभाल ही नहीं सकते।

(4) सारे लोग (ज्ञानी, विद्वान् तथा समस्त प्रजाजन) संगठित होकर पूरी एकता से स्वराज को बनाये रखने के लिये निरन्तर पुरुषार्थ करते रहें।

(5) सब का दृष्टिकोण अत्यन्त व्यापक तथा पारदर्शी हो। संकीर्णता, हेयता, जातीयता, तुच्छता तथा आपस की वैमनस्यता स्वराज्य के घोर शत्रु हैं।

किसी भी प्रकार की पराधीनता वेद को स्वीकार नहीं। वेद की तो कामना ही 'अदीनाः स्याम शरदः शतम्' (ऋग. 7/69/16, यजु. 36/24) सौ शरद वर्षों तक अदीनता से रहने की है। अतः वेद के अनुसार पराधीनता की अवस्था में स्वराज्य का अर्चन बल, ओज, तेज और पराक्रम से दासता की जंजीरों में जकड़ने वाले शत्रुओं को छिन्न भिन्न कर मार भगा देने से होता है। पराधीनता से मुक्त होने के लिये वेद सशस्त्र क्रान्ति का विरोधी नहीं है। 'शविष्ठ वज्रिन-ओजसा पृथिव्या निः शशा अहिम् अर्चन् अनु स्वराज्यम्' (ऋग. 1/80/1) शविष्ठ (क्रान्तिवीर) वज्रिन (शस्त्रास्त्र विद्या में पारंगत सेनानी) ओज से दासता की जंजीरों में बांधने वाले कुटिल शत्रुओं को मार कर पृथिवी पर स्वराज्य के लिये अनुकूल अर्चन करें। अगले मन्त्र में भी आया 'येना वृत्रं निरदभ्यो जघन्य वज्रिन ओजसा, अर्चन् अनु स्वराज्यम्' (ऋग. 1/80/2) जैसे सूर्य जल के लिये मेघों को छिन्न भिन्न कर देता है, वैसे ही वज्रिन उसी पराक्रम से शत्रुओं को सर्वथा निकाल बाहर कर स्वराज्य के लिये अनुकूल अर्चन करे।

स्वराज्य प्राप्ति के लिये जैसा प्रयत्न अपेक्षित है, उसी प्रकार स्वराज्य को बनाये रखने तथा उसकी रक्षा के लिये महान पुरुषार्थ निरन्तर करते रहना आवश्यक है। जो हमारी आजादी पर, हमारे अपने राज्य पर डाका डालने की चेष्टा करे, उस आजादी के लिये शत्रु के लिये वेद का आदेश है–

'इन्द्रो वृत्रस्य दोधतः सानुं वज्रेण हीडितः।
अभिक्रम्याव जिघ्नतेऽपः सर्माय चोदयन् अर्चन् अनु स्वराज्यम्।।

ऋग्वेद 1/80/5

सूर्य जिसप्रकार अपनी वज्र रूपी किरणों से वायु वेग से कांपते हुये मेघों के उन्नत भाग को विद्युत् के आघात से आक्रमण करके जलधाराओं की वृष्टि करता है, उसी प्रकार अधिपति 'इन्द्र' अपने राज्य का अर्चन अर्थात् मान सम्मान बनाये रखने हेतु उमड़ते हुये शत्रु के सैन्य बल को सब ओर से वेग से आक्रमण कर मार भगावे, जलधाराओं के समान टिकने न दे।

स्वराज्य अर्चन का लक्ष्य

वेद के अनुसार स्वराज्य अर्चन का लक्ष्य अपने राज्य का चहुंमुखी प्रगति और विकास करना है। 'मन्दान इन्द्रो अन्धसः सखिभ्यो गातुम् इच्छति' (ऋग. 1/80/6) अर्थात् उत्तम रीति से 'इन्द्र' अन्न का दाता तथा सखाओं के लिये खुशहाली की इच्छा रके। अपनी भूमि पर बसने वाले समस्त मानव उसके सखा ही हैं। उनकी प्रसन्नता के लिये सारा नियोजन होना चाहिये। 'तस्मिन् नृम्णाम् उत क्रतुं देवाः ओजांसि सं दधुः' (ऋग. 1/80/15) 'इन्द्र' का आश्रम लेकर देवगण अर्थात् दानशील, ज्ञानी, सदाचारी जन अपने अधिकार क्षेत्र में धन, उतम कर्म तथा ओज (बल पराक्रम, सामर्थ्यो) को सम्यक् भली भाँति धारण करें, स्थापना करें। 'तस्मिन ब्रह्माणि पूर्वथेन्द्र उक्था सम् अग्मत' (ऋग. 1/80/16) उसी इन्द्र के आश्रम से पूर्वजों के तुल्य समस्त जन, अन्न, धन, ऐश्वर्य, ब्रह्मज्ञान, आदि तथा स्तुति योग्य गुणों को समान रूप से प्राप्त हों।

स्वराज्य अर्चन में 'इन्द्र' की भूमिका

वेद के स्वराज्य सूक्त का देवता है 'इन्द्र'। स्वराज्य के अनुरक्षण में 'इन्द्र' की बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका है। वेद में 'इन्द्र' शब्द बहुआयामी है। संक्षेप में, शरीर में इन्द्रियों का अधिपति 'आत्मा' 'इन्द्र' है। गृह (परिवार) में 'गृहपति' इन्द्र है। सभा, संसद आदि में 'सभापति' इन्द्र है। गणों में गणपति इन्द्र है। राष्ट्र में राष्ट्रपति इन्द्र है। राज्य में राज्याध्यक्ष इन्द्र है। संयुक्त राष्ट्र संघ में 'राष्ट्रसंघ का अध्यक्ष इन्द्र है। सौर मण्डल में सौरमण्डल का अधिपित इन्द्र है। इस प्रकार प्रत्येक क्षेत्र में उसका अधिपति स्वामी, अध्यक्ष, प्रधान आदि इन्द्र ही है। वेद (ऋग. 8/98/10 साम. 1169, अथर्व. 20/108/1) के अनुसार यह इन्द्र बहुश्रुत विद्वान, परम मेधावी, कुशाग्र बुद्धि, बलिष्ठ, सशक्त, सदाचारी, शत्रुहन्ता, शूर, वीर, शतक्रतु, पराक्रमी, विचक्षण और सर्वद्रष्टा होना चाहिये। ऋग. 1/80/16 में 'इन्द्र' को 'अथर्वा' (अकम्पित, सुदृढ़ तथा अहिंसक) 'मनुः' (मननशील, ज्ञानवाला) 'पिता' (सब का धारण पोषण करने वाला), 'दध्यङ्' (उत्तम गुणों को प्राप्त करने तथा अन्यों को कराने वाला), 'धियम्' (बुद्धिमान एवं व्यवहारकुशल) के रूप में देखा गया है।

इस इन्द्र को वेद का आदेश है–

प्रेह्यभीहि धृष्णुहि न ते वज्रो नि यंसते।
इन्द्र नृम्णं हि ते शवो हनो वृत्रं जया अपोऽर्चन्ननु स्वराज्यम्।।

ऋग्वेद 1/80/3

हे (इन्द्र) ! (अर्चन् अनु स्वराज्यम्) स्वराज्य का निरंतर अर्चन करता हुआ (प्र.इहि) प्रगति कर। (अभि इहि) सब ओर से बढ़ (धृष्णुहि) सुदृढ़ता से उत्क्रमण कर, अतुल साहस और उत्साह से विघ्न बाधाओं को धड़ल्ले से परास्त करता हुआ लक्ष्य को पूर्ण कर। (ते वज्रः न निः यंसते) तेरा वज्र शत्रुओं से निश्चय ही न रोका जा सके। (नृम्णां हि ते शवः) धन भौतिक और अभौतिक सम्पदायें ही तेरा बल है। (हनः वृत्रम्) वृत्रों, अर्थात् आसुरी मनोवृतियों वा असुरों, दुष्टों का हनन कर। (अपः जय) जलों/प्रजाओं को जीत।

स्वराज्य अर्चन का महत्व

वेद में स्वराज्य के साथ 'अर्चन' शब्द आया है। अर्चन में पूजन, वन्दन, वर्धन, मान सम्मान, यश, प्रतिष्ठा, समर्पण, सत्कार सभी कुछ आ जाता है। किन्तु अर्चन होता उसी का है, जिसके प्रति उत्कृष्ट भक्ति हो। स्वराज्य के प्रति प्रत्येक प्राणी की निष्ठा हो, समर्पण की भावना हो, यही स्वराज्य का अर्चन है। प्रत्येक व्यक्ति तथा जन प्रतिनिधियों और जन नेताओं का यह कर्तव्य बनता है कि वे स्वकीय राज्य की गरिमा के अनुकूल उसकी मान मर्यादा और प्रतिष्ठा में निरन्तर वृद्धि करें। प्रगति और सर्वांगीण विकास स्वराज्य अर्चन का माध्यम हों। प्रगति में गतिशीलता और क्रियाशीलता दोनों आ जाते हैं। सर्वांगीण विकास में शारीरिक उन्नति, आत्मिक उन्नति, सामाजिक उन्नति और आर्थिक उन्नति सब सन्निहित हैं। आर्थिक सुसम्पन्नता, जिसमें कृषि, उद्योग, व्यापार तथा मूलभूत अवस्थापना सुविधाओं का विकास सम्मिलित है, स्वराज्य को दृढ़ता एवं प्रतिष्ठा प्रदान करती है।

स्वराज्य अनुरक्षण के मूलाधार

(1) ब्रह्म और क्षत्र का सहविचरण।

ब्रह्म और क्षत्र स्वराज्य के दो पहिये हैं। ब्रह्म प्रतीक है अध्यात्म का। क्षत्र प्रतीक है, धर्म पर आश्रित न्याय और सुरक्षा व्यवस्था का। 'यत्र ब्रह्म च क्षत्रं च सम्यन्चौ चरतः सह। तंल्लोकं पुण्य प्र ज्ञेषं यत्र देवा सहाग्निना।' (यजुर्वेद 20/25) जहां देवगण अग्नि (प्रगतिशील नेतृत्व) प्रदान करते हैं, उस स्वकीय राज्य को पुण्यलोक जाना जाता है, वही सुराज्य 'सु–राज' है।

(2) समत्व की भावना

कोई छोटा नहीं, कोई बड़ा नहीं। कोई नीच नहीं, कोई ऊंच नहीं। 'अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते सं भ्रातरो वावृधः सौभगाय' (ऋग. 5/60/5) सब भाई भाई, सौभाग्य के लिए संबद्ध हों। सब की एक भाषा, एक वेश, एक शील, एक संस्कृति हो, तब होता है स्वराज्य 'सु–राज्य'।

(3) विप्रों का शासन

जो विविध रूप से प्रीति, पालन और पूर्ति करने वाला हो, उसे 'विप्र' कहते हैं। वेद में आया 'अयं सहस्त्रम् ऋषिभिः सहस्कृतः समुद्र इव पप्रथे। सत्यः सो अस्य महिमा गृणे शवो यज्ञेषु विप्र राज्ये।।' (ऋग. 8/3/4, यजु. 33/83, साम. 1608, अथर्व 20/10/42) वही 'सुराज्य' की सच्ची महिमा है जहां, विप्र ऋषियों द्वारा असंख्य प्रकार से सहकृत तथा सागर के समान यह विस्तारा जाता है। विप्रों के राज्य में समृद्धि की गणना यज्ञों (श्रेष्ठतम कर्मो के सम्पादन) से होती है।

(4) वृत्रों का हनन

उमड़ घुमड़ कर जो घेरा डालें, उन्हें कहते हैं 'वृत्र'। इस प्रकार मेघ (बादल) वृत्र हैं। मनुष्य के अन्दर काम, क्रोध, लोभ, मद, मोह, द्वेषादि से जनित वासनायें वृत्र हैं। समाज में कामी, क्रोधी, लोभी, नशेड़ी, क्रूर, व्यभिचारी, भ्रष्टाचारी, अत्याचारी अनेक प्रकार के आर्थिक एवं सामाजिक अपराधों में लिप्त दुष्ट जन वृत्र हैं। इन सब के अपने अपने दल वा गिरोह होते हैं, और लोगों को सताना एवं पीड़ित करना इनकी वृत्ति बन चुकी होती है। यह वृत्र बाहर के शत्रु नहीं, अन्दर के भितरघाती शत्रु हैं। स्वराज्य के अनुरक्षण के लिये इनका निरन्तर हनन आवश्यक है, वरना स्वयं स्वराज्य का खतरे में पड़ जाना कोई आश्चर्य नहीं। वेद में वृत्रों के हनन का अनेक मन्त्रों में स्पष्ट आदेश है, जिससे 'सुराज्य' शांतिमय और कल्याणकारी हो सके।

(5) प्रजा का विश्वास एवं उसकी गुणवत्ता

प्रजा की सन्तुष्टि और सुरक्षा से स्वराज्य का वर्धन होता है। इस के लिये प्रजा का राज्य में विश्वास और उसका समुचित नियमन एवं नियन्त्रण आवश्यक है। वेद में इसको यूं कहा 'सृजा मरुत्वतीरव जीवधन्या इमा अपः अर्चत् अनु स्वराज्यम्' (ऋग. 1/ 80/ 4) स्वराज्य का अर्चन करता हुआ इन जीवन धन्य मानवी प्रजाओं तथा उनके प्रवाह पर अपना वर्चस्व रख। प्रजाजन भी ऋगवेद 2/ 21 / 5 के अनुसार 'उशिजः' (कामनाशील), 'अवस्–यवः' (स्वतन्त्रत, सभ्यता और संस्कृति की रक्षा के लिए कटिबद्ध), 'मनीषिण' (मनीषी, मननशील), 'अप्तुरः' (कार्यो को शीघ्र निपटाने वाले कर्मकुशल), 'धियः हिन्वानाः' (धियों के प्रयोगी, अर्थात बुद्धिकौशल और पुरुषार्थ, योजना और कर्तव्य का समन्वय करने वाले), तथा 'यज्ञेन गातुम् विविद्रिरे' (यज्ञों, श्रेष्ठतम कर्मो द्वारा अपना मार्ग स्वयं प्रशस्त करने वाले अन्वेषी) हों।

उपसंहार

'स्वराज्य विषयक वेद की बातों पर यदि हमने ध्यान नहीं दिया, तो परिणाम कुछ भी हो सकते हैं। काश! वेद का सन्देश विश्व, तथा राष्ट्रों एवं मानव समाज के कर्णधारों तक हम पहुंचा पाते। वेद का कथन यही है, कि अभी भी समय है। वेद का आह्वान है–

'मन्द्रा कृणुध्वं धिय आ तनुध्वं, नावम् अरित्रपरणी कृणुध्वं। इष् कृणुध्वम् आयुधारं कृणुध्वं, प्राञ्चं यज्ञं प्रणतया, सखाय।'

ऋग. 10 / 101/ 2

श्री महर्षि दयानन्द सरस्वती का जीवन परिचय

स्वामी जी एक औदीच्य ब्राह्मणों के शैव घराने में सम्वत् 1881 में काठियावाड़ प्रान्त के अन्तर्गत टंकारा ग्राम में उत्पन्न हुए थे और उनका नाम मूलशंकर था। एक बार शिवरात्रि के पर्व पर उनके पिता ने जब 'मूलशंकर' की आयु केवल 14 वर्ष की थी, उन्हें शिवरात्रि व्रत रखने के लिए विवश किया और व्रत रखा गया। रात्रि में जब उनके पिता उनके साथ शिव की पूजा करके चढ़ावा चढ़ा चुके और शिव की आराधना के विचार से शिव के सामने बैठे तो ऊंघने लगे। इस बीच एक चूहा आया जो अच्छी तरह जानता था कि शिव जी की मूर्ति चेतनाशून्य एक जड़ वस्तु है और इसीलिए निर्भीकता के साथ मूर्ति के ऊपर इधर–उधर घूमकर मजे से चढ़ावे की वस्तुएं चखने लगा। स्वामी जी इस घटना को देखकर चकित हो गए कि यह कैसा शिव है कि जो चूहे से भी अपनी रक्षा नहीं कर सकता। सर सैय्यद अहमद ने इसी घटना का उल्लेख करते हुये लिखा है कि यह इलहाम नहीं था तो क्या था? पिता को जगाकर मूलशंकर ने अपना सन्देह प्रकट कर दिया किन्तु उत्तर डांट–डपट के सिवाय कुछ न था। इस घटना ने स्वामी जी की आंख खोल दी और देवी–देवताओं के नाम से ईश्वरोपासना की जो मिट्टी पलीद की जा रही थी उसका उन्हें पूरा ज्ञान हो गया।

एक दूसरी घटना

इस घटना के कुछ काल बाद स्वामी जी की प्रिय भगिनी और चाचा की (जो स्वामी जी को बहुत प्यार से रखता था) थोड़े–थोड़े अन्तर से मृत्यु हो गई। इन घटनाओं ने मृत्यु का प्रश्न भी स्वामी जी के सामने रख दिया और वह सोचने लगे कि–मृत्यु क्या है और किस प्रकार मनुष्य इस पर विजय पाकर मृत्युञ्जय हो सकता है। गौतम बुद्ध ने पहली बार जब एक शव को श्मशान भूमि में ले जाते देखा तो उसके सामने भी यह मृत्यु का प्रश्न उपस्थित हुआ था और उसे गृह त्याग के लिए विवश किया था।

योगाभ्यास और तपस्वी जीवन

इन दो घटनाओं से स्वामी जी को काफी शिक्षा मिल गई और उन्होंने जीवनोद्देश्य की सिद्धि के लिए पैतृक सम्पत्ति पर लात मार कर प्राचीन विश्वविद्यालयों की ओर जिनके स्थान भारतवर्ष के जंगल और तपोभूमियां ही हुआ करती थी, पग बढ़ाया और संन्यास ग्रहण किया और मूलशंकर से दयानन्द बनकर योग सीखना शुरू किया और कठोर तप के जीवन में प्रवेश करके और नर्मदा के तट से लेकर हिमालय की कन्दराओं तक पर्यटन करते हुए जिससे और वहां से जो शिक्षा मिली ग्रहण करते रहे। शरीर पर एक लंगोटी के सिवाय दूसरा वस्त्र नहीं था। शीत की ऋतु में एक बर्फ से जमी हुई नदी को पार करना था तब कि पिशाचिनी भूख ने भी सता रखा था, नग्न शरीर से ही बर्फ की चट्टानों से टकराते गिरते–पड़ते किसी प्रकार नदी को पार किया और इन्हीं बर्फ की चट्टानों में से दो–एक टुकड़े तोड़कर भूख को शांत किया। जब कष्ट जिनके स्मरण करने मात्र से साधारण मनुष्यों के ही नहीं किन्तु बड़े–बड़े शूरवीरों के भी हृदय कांप उठते हैं, प्रसन्नता से सहन करते हुए स्वामी दयानन्द ज्यों–ज्यों शिक्षा और दीक्षा से ज्ञान और बल वृद्धि करते जाते थे, त्यों–त्यों अपने में साहस और उत्साह की मात्रा का अधिकाधिक अनुभव करते थे। इसीलिए जो कदम उठता था, आगे ही उठता था, पीछे फिरने का विचार भी नहीं आता था। कठिन से कठिन झाड़ियों का हाथों और पांवों के सहारे से, पशुओं की तरह चलकर पार कर लेना उनके लिए साधारण काम था। जब एक झाड़ी को पार करते हुए सामने एक भयानक रीछ आ गया और आक्रमण करने की चिन्ता में ही था कि स्वामी जी के निर्भीकता के साथ जमकर खड़े हो जाने और दण्ड के पृथ्वी पर ठोकर देने मात्र से वह भालू साहस छोड़कर भाग जाता है। यह था अखण्ड ब्रह्मचर्य का बल, यह था आत्मशक्तियों के विकास का परिणाम, जिसने स्वामी दयानन्द को 19वीं शताब्दी में प्राचीन काल के ऋषि–मुनियों का उदाहरण बना रखा था। इस प्रकार स्वामी जी समाधि पर्यन्त योग की उच्च शिक्षा प्राप्त करते और तप से अपने शरीर को फौलाद का शरीर बनाते हुए मथुरा में पहुंच कर अपने अन्तिम गुरू श्री स्वामी विरजानन्द का द्वार खटखटाते हैं– तीन वर्ष तक इस अद्भुत गुरू के चरणों में बैठकर स्वामी दयानन्द अष्टाध्यायी, महाभाष्य की शिक्षा पाते और अनेक ऋषि–प्रणीत ग्रन्थों की जानकारी प्राप्त करते हुए सबसे बड़ी वस्तु वेदार्थ करने की कुञ्जी प्राप्त करते हैं। इस प्रकार यहीं उनकी शिक्षा और दीक्षा समाप्त होती है।

गुरु दक्षिणा और कार्य क्षेत्र में प्रवेश

शिक्षा और दीक्षा समाप्त हो गई सही परन्तु स्वामी जी का इस अन्तिम गुरु से छुटकारा सुगम कार्य न था। इस अद्भुत गुरु की गुरु दखिणा भी अद्भुत ही थी। यह थी स्वामी दयानन्द से वेद–प्रचार, पाखण्ड–खण्डन, मानव–जाति के उद्धार और प्राचीन आर्य–सभ्यता के विस्तार में लगने की प्रतिज्ञा कराना। इसी उद्देश्य को लक्ष्य में रखते हुए और यह सोचते हुए कि यदि योग का अभ्यास करते हुए मोक्ष को प्राप्त भी कर लिया तो उससे केवल व्यक्तिगत स्वार्थ की सिद्धि होगी, उन्होंने इस उद्योग से मुंह फेर कर जनता के सुधार–कार्य करने ही में अपना जीवन लगा देना श्रेष्ठ समझा और इसी उद्देश्य से परिभ्रमण प्रारम्भ किया। अनेक स्थानों पर भ्रमण करते और लोगों को वैदिक धर्म की शिक्षा देते हुए कुम्भ के मेले पर हरिद्वार पहुंचे और वहां एक स्थान पर डेरा डालकर प्रचार–कार्य प्रारम्भ किया।

पाखण्ड खण्डनी पताका

उनके कैम्प की विशेषता उनकी पताका भी जो वहां लगाई गई थी और जिस पर 'पाखण्ड–खण्डनी पताका' लिखा हुआ था। अनेक पुरूष–स्त्री, साधु–सन्यासी, पण्डित, विद्वान वहां आते और प्रश्नोत्तर करते रहे। स्वामी जी प्रत्येक को उसके पाखण्डों का ज्ञान कराकर उनके छोड़ने और वैदिक शिक्षा के ग्रहण करने का उपदेश देते रहे। मेले के अन्त तक उनका यह कार्य बराबर जारी रहा। मेला समाप्त होने पर उनके हृदय में यह विचार आया कि उनके उपदेशों का प्रभाव जितना चाहिए था उतना नहीं हुआ। उसके हेतु पर उन्होंने विचार किया और निश्चय यह हुआ कि अब भी उनमें तप की कमी है। दुनियां के लोगों ने एक नियम सा बना रक्खा है कि असफलता का दोष अन्यों के सिर मढ़ा करते हैं परन्तु ऋषि दयानन्द का मामला ही विलक्षण है। वह अपनी असफलता का दोष–यदि इसे असफलता कहा जा सके–अपने जिम्मे लेता है और अपने तप की कमी देखता है। यही है ऋषियों का ऋषित्व। और इसीलिए मेले के समाप्त होते ही यज्ञ करके जितनी भी वस्तुएं उनके पास थी सब एक–एक करके दे डाली और एक लंगोटी के सिवाय अपने पास कुछ नहीं रखा। इस प्रकार सब कुछ देकर गंगा तट पर भ्रमण और निवास करते, तपस्वी जीवन व्यतीत करते, प्रचार करते रहे।

एक अद्भुत दृश्य

कर्णवास के निकट गंगा तट की विस्तृत रेती है। रात्रि का समय है, चांदनी खिल रही है, शीत ऋतु अपना प्रभाव रेती पर डाल रही है। उसी रेती पर एक नग्न शरीर केवल कौपीनधारी आदित्य ब्रह्मचारी लेटा हुआ प्रभु के महान् यज्ञ को आँख पसार–पसार कर देख रहा है। हृदय मग्न और चित्त प्रफुल्लित है। मन आह्लादित हो रहा है। ऋषि दयानन्द द्वन्द्व से रहित स्वस्छ हृदय में कोई चिन्ता है तो आर्य जाति के भविष्य की है कोई सोच है तो गिरे हुए भारतवर्ष का, कोई कामना है तो वेद प्रचार की। अहा! कैसा अपूर्व दृश्य, एक तपस्वी ईश्वर के प्रेम में मग्न होते हुए भी मानव जाति के उद्धार की चिन्ता में निमग्न है। धन्य भारत भूमि! धन्य है ऋषि–मुनियों की जन्मदात्री भूमि! धन्य वैदिक सभ्यता की प्रसारकर्तृ भूमि! तेरे सिवाय किस में सामर्थ्य है कि दयानन्द जैसा पुत्र उत्पन्न कर सके? तेरे सिवाय और किसमें शक्ति है कि ऐसा निष्काम तपस्वी वीर पैदा कर सके।

ऋषि दयानन्द का कार्य

इसी प्रकार ऋषि दयानन्द ने अपना भावी कार्यक्रम स्थिर कर लिया, जिसको हम तीन भागों से विभक्त कर सकते हैं।

(1) मौखिक प्रचार कर शास्त्रार्थों द्वारा पाखण्ड खण्डन और वेद प्रचार। (2) वेद भाष्य और अन्य ग्रन्थों के निर्माण द्वारा संस्कृत के प्रचार की दृढ़ भूमि तैयार करना। (3) उपर्युक्त दोनों कार्यों के जारी रखने के लिए अपने स्थानापन्न की भांति आर्य समाजों का स्थापित करना। पहले उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने काशी आदि प्रसिद्ध–प्रसिद्ध स्थानों पर जाकर अनेक व्याख्यान दिए और ईसाई, मुसलमान और पौराणिकों से अनेक शास्त्रार्थ किए। जिसका फल यह हुआ कि लोग वेदों की सच्चाई का लोहा मानने लगे। प्राचीन आर्य सभ्यता की धाक बंध गई और संस्कृत भाषा का सिक्का लोगों के दिलों में बैठ गया। महमूद गजनवी एवं औरंगजेब मूर्तियों को तोड़–फोड़ कर भी हिन्दुओं से मूर्ति पूजा छुड़ाने में सफलता प्राप्त नहीं कर सके थे परन्तु स्वामी दयानन्द के सच्चाई भरे मधुर उपदेशों ने वह किया जो उनकी तलवारें नहीं कर सकती थी। कानपुर आदि अनेकों स्थानों में लोगों ने अपने–अपने मंदिरों और घरों

से मूर्तियां उठा–उठाकर गंगा में बहानी शुरू कर दी और इस प्रकार लाखों नर–नारी मूर्ति पूजा की अवैदिक प्रथा से मुक्त हो गये।

(2) दूसरे उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने सत्यार्थप्रकाश, संस्कार विधि, ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका–आदि अनेक ग्रन्थ लिखे। वेद का भाष्य प्रारम्भ किया। यजुर्वेद तो पूर्ण हो गया था। परन्तु ऋग्वेद सातवें मण्डल के कुछ सूक्तों तक ही हो सका। इन ग्रन्थों ने असंख्य मनुष्यों के हृदय में प्रकाश पहुंचाया। ब्रह्मचर्य की महत्ता स्थापित की, वेद और वैदिक सभ्यता से प्रेम उत्पन्न किया। इन ग्रन्थों का प्रचार भारत देश की चारदीवारी से निकल कर यूरोप और अमरीका आदि देशों में हुआ। ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका को गत वर्ष इलाहाबाद यूनिवर्सिटी ने अपने संस्कृत के कोर्स में दाखिल करके अपनी एक त्रुटि की पूर्ति की है। वह दिन समीप ही आने वाला है जब कि भारत की सभी यूनिवर्सिटियों को स्वामी दयानन्द के वेद भाष्य को भी ऐसा ही मान करना पड़ेगा।

(3) तीसरे उद्देश्य की पूर्ति के लिए बम्बई, आगरा, मेरठ, देहली, अजमेर, लाहौर आदि अनेक स्थानों पर आर्य समाजों की स्थापना की गई। ऋषि दयानन्द ने जिस उद्देश्य से आर्य समाजों की स्थापना की थी। आर्य समाजें यथासम्भव उन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए यत्नवान् हैं और इस अर्थ में वे ही स्वामी जी के सच्चे स्थानापन्न हैं।

ऋषि दयानन्द के अन्तिम कार्य और उनका परलोक गमन

ऋषि दयानन्द ने अवशिष्ट जीवन इन्हीं तीन उद्देश्यों की पूर्ति में लगाया। उन्होंने उद्देश्य नं. 2 की पूर्ति के लिए एक प्रेस भी खोला था। जो आजकल अजमेर में वैदिक यन्त्रालय, के नाम से प्रसिद्ध है। अपने रचे पुस्तकों के छपवाने आदि के प्रबन्ध और छोड़ी हुई सम्पत्ति को अनाथों की रक्षा और देश–देशांतर, द्वीप–द्वीपांतर में वैदिक धर्म के प्रचार में लगाने के लिए एक सभा 'परोपकारिणी सभा' के नाम से स्थापित की। वैदिक प्रेस आदि का प्रबन्ध इसी परोपकारिणी सभा के अधीन है। इस सभा के प्रधान उस समय श्री महाराणा सज्जन सिंह जी उदयपुराधीश, मन्त्री पं. विष्णुलाल मोहनलाल पंडया और सभासद् महादेव गोविन्द रानाडे आदि सज्जन थे। इस सभा के प्रधान महाराजा गायकवाड़ सर सियाजी राव बड़ौदाधीश और मंत्री श्री राजाधिराज सर नाहरसिंह जी बहादुर शाहपुरा नरेश थे। यथा समय चुनाव होकर नये अधिकारी बनते रहते हैं।

प्रचार के लिए भ्रमण करते हुए जोधपुर राज परिवार के सदस्यों के आग्रह से स्वामी जी जोधपुर पहुंचे। उन्हे राज प्रबन्ध से एक विशाल भवन में ठहराया गया। जोधपुर दरबार ने स्वामी जी को दरबार में पधारने का निमंत्रण दिया। स्वामी जी दरबार की ओर गये। दरबार में उस समय एक वेश्या जिस पर जोधपुर नरेश रीझे हुए थे, मौजूद थी। स्वामी जी के दरबार में पधारने का समाचार पाते ही दरबार से वेश्या को विदा किया गया। परन्तु जब वेश्या की डोली चली तो जोध पुर नरेश ने भी इस विचार से डोली जल्दी जाये। घबराहट में डोली के उठाने आदि में सहारा दिया। इस अन्तिम कृत्य को स्वामी जी ने देख लिया और बड़ी निर्भीकता के साथ वीर स्वर से महाराजा को सम्बोधन करके कहा– "राजा सिंह समान होते हैं। धिक्कार है यदि वे कुतिआ सदृश वेश्याओं के पीछे दौड़े।" महाराजा का सिर लल्जा से नीचा हो गया परन्तु वेश्या क्रोध से जल–भुन कर लाल अंगारा बन गई। परिणाम यह हुआ कि उस वेश्या ने अपने सहायकों की सहायता से स्वामी जी को अत्यन्त बारीक कांच पिसवाकर दूध में मिला कर दिलवाया। स्वामी जी जोधपुर से रूग्णावस्था में ही आबू और फिर अजमेर पहुंचे, जहां कार्तिक वदी अमावस्या सं. 1940 वि. ठीक दिपावली के दिन वेद–मन्त्रों का उच्चारण करके प्रसन्न चित्त यह कहते हुए, "ईश्वर आपने अच्छी लीला की, आपकी इच्छा पूर्ण हो" अन्तिम श्वास छोड़ कर संसार से विदा हो गए।

ऋषि दयानन्द के जीवन की विशेष घटनाएं

यों तो ऋषि का सारा जीवन विचित्र और विलक्षण घटनाओं से भरा हुआ है और कुछ भी छोड़ने के योग्य नहीं है, परन्तु विस्तार भय से उनमें से केवल कुछेक का यहां उल्लेख किया जाता है–

(1) अनुपशहर की घटना है कि स्वामी जी के स्पष्ट उपदेश से अप्रसन्न होकर एक दुष्ट पुरूष ने स्वामी जी के पास आकर नम्रता प्रदर्शित करते हुए एक पान का बीड़ा स्वामी जी को भेंट किया। स्वामी जी ने लेकर उसे मुंह में रख लिया। मुंह में रखते ही उन्हें मालूम हो गया कि इसमें विष मिला हुआ है। बस्ती और न्यौलीक्रिया करके उन्होंने उसके प्रभाव को नष्ट कर दिया। जब यह हाल वहां के मजिस्ट्रेट सैयद मुहम्मद को मालूम हुआ तो उसने उस दुष्ट व्यक्ति को पकड़ कर हवालात में रख दिया और जब वह स्वामी जी के पास अपनी कारगुजारी प्रकट करने आया तो स्वामी जी ने अप्रसन्नता प्रकट करके उसे छुड़वा दिया और कहा कि– "मैं दुनियां को कैद कराने नहीं, किन्तु कैद से छुड़ाने आया हूं।"

(2) जब स्वामी जी कर्णवास में थे तो अनूपशहर का एक अच्छा संस्कृतज्ञ विद्वान पं. हीरा वल्लभ अपने कतिपय साथियों के साथ शास्त्रार्थ के लिए स्वामी जी के पास आया। सभा संगठित हुई। हीरा बल्लभ ने बीच में ठाकुर जी का सिंहासन, जिस पर शालिग्रामादि की मूर्तियां थी, रख कर सभा में प्रतिज्ञा की कि मैं स्वामी जी से इन्हें भोग लगवा कर ही उठूंगा। छः दिन तक बराबर धारा प्रवाह संस्कृत में शास्त्रार्थ होता रहा। सातवें दिन हीरावल्लभ ने सभा में प्रकट कर दिया कि जो कुछ स्वामी जी कहते हैं वही ठीक और सिंहासन पर वेद की स्थापना की।

(3) कर्णवास की एक दूसरी घटना है। एक दिन स्वामी जी गंगा तट पर उपदेश कर रहे थे। बरौली के राव कर्णसिंह अपने कुछ हथियार बन्द साथियों सहित वहां आये और बातचीत करते–करते ही बड़े क्रोध में आकर उन्होंने तलवार खींच कर स्वामी जी पर आक्रमण किया। स्वामी जी ने तलवार छीनकर दो टुकड़े कर दिये और राव को पकड़ कर कहा कि मैं तुम्हारे साथ इस समय वही सलूक कर सकता हूं जो किसी "आततायी" के साथ किया जा सकता है। परन्तु मैं संन्यासी हूं इसलिए छोड़ता हूं। जाओ ईश्वर तुम्हें सुमति देवे।

(4) प्रयाग की घटना है कि एक दिन स्वामी जी सभा में विराजमान थे। पं. सुन्दरलाल जी आदि कतिपय सभ्य पुरुष भी उपस्थित थे। स्वामी जी यकायह हंस पड़े। कारण पूछने पर बतलाया कि एक पुरूष मेरे पास आ रहा है उसके आने पर एक कौतुक दिखाई देगा। थोड़ी देर के बाद एक व्यक्ति स्वामी जी के लिए कुछ विष मिश्रित मिठाई लाकर कहने लगा कि महाराज इसमें से कुछ भोग लगावें। स्वामी जी ने थोड़ी–सी मिठाई उठाकर लाने वाले को दी इसे तुम खाओ परन्तु उसने मिठाई लेने और खाने से इन्कार कर दिया। स्वामी जी इस पर हंस पड़े और पं. सुन्दरलाल जी आदि पुरुषों से कहा कि देखो यह अपने पाप के कारण स्वयं कांप रहा है और लज्जित है। इसे पर्याप्त दण्ड मिल गया अब और दण्ड की जरूरत नहीं। यह थी दयानन्द की दयालुता।

(5) एक दिन बरेली में स्वामी जी व्याख्यान दे रहे थे। व्याख्यान में नगर के गण्यमान पुरुष और बड़े–बड़े राज कर्मचारी कमीश्नर आदि सभी उपस्थित थे। व्याख्यान में ईसाई मत का खूब खण्डन किया गया। दूसरे दिन के व्याख्यान से पूर्व उनसे कहा गया कि आप इतना खण्डन न करें इससे उच्च कर्मचारी अप्रसन्न होंगे दूसरे दिन का व्याख्यान प्रारम्भ हुआ। व्याख्यान में कमिश्नर आदि सभी उच्च राज कर्मचारी उपस्थित थे। स्वामी जी ने गरज कर कहा "लोग कहते हैं कि असत्य का खण्डन न कीजिए पर चाहे चक्रवर्ती राजा भी अप्रसन्न क्यों न हो जाय हम तो सत्य ही कहेंगे।" इसी को कहते है सत्य पर अटल विश्वास।

(6) एक दिन कतिपय सज्जनों के साथ उदयपुर में स्वामी भी भ्रमण करने जा रहे थे। मार्ग में कुछ बालक खेल रहे थे, उनमें एक बालिका भी थी। स्वामी जी ने उसे देख कर सिर झुका दिया। पूछने पर प्रकट किया कि यह "मातृ शक्ति है। जिसने हम सबको जन्म दिया है" इस प्रकार सम्मान का भाव जब स्त्री जाति के प्रति कोई जाति के तो वह सभ्य कही जा सकती है।

(7) उदयपुर की एक दूसरी घटना है। एक दिन स्वामी जी ने श्री महाराणा सज्जनसिंह जी उदयपुर नरेश को मनुस्मृति का पाठ पढ़ाते हुए कहा कि "यदि कोई अधिकारी धर्म पूर्वक आज्ञा दे तभी उसका पालन करना चाहिए। अधर्म की बात न माननी चाहिए।" इस पर सरदारगढ़ के ठाकुर मोहन सिंह जी ने कहा कि महाराणा हमारे हैं, यदि इनकी कोई बात हम अधर्मयुक्त बतला कर न मानें तो ये हमारा राज छीन लें। इस पर स्वामी जी ने कहा कि "धर्महीन हो जाने से और अधर्म के काम करके अन्न खाने से तो भीख मांग कर पेट का पालन करना अच्छा है।"

(8) एक तीसरी घटना उदयपुर की और भी है। एक दिन एकान्त में स्वामी जी से महाराणा ने कहा कि महाराज! आप मूर्ति पूजा का खण्डन करना छोड़ दें। यदि आप इसे स्वीकार कर लें तो एक लिंग महादेव के मन्दिर गद्दी जिसके साथ लाखों रूपये की जायदाद लगी हुई है आपकी होगी, और सारे राज्य के गुरू माने जायेंगे। स्वामी जी ने उत्तर दिया– "आपके सारे राज्य से मैं एक दौड़ लगाकर बाहर जा सकता हूं। फिर मैं किस प्रकार इस तुच्छ प्रलोभन में आकर ईश्वर की आज्ञा भंग करूं।" यह है सच्चा त्याग।

(9) जोधपुर की वेश्या के षड्यंत्र में फंस कर लालची जगन्नाथ ने स्वामी जी का विश्वासपात्र पाचक होते हुए भी स्वामी जी को बारीक पिसा हुआ कांच दूध में मिला कर पिला दिया। स्वामी जी ने प्रकट हो जाने पर जगन्नाथ को कुछ न कह कर कहा कि जगन्नाथ! ले यह कुछ रूपये हैं। इन्हें लेकर नेपाल के राज्य आदि किसी ऐसे स्थान पर चला जा, जहां तू पकड़ा न जा सके और तुझे अपने प्राण न खोने पड़े।" अहा! इस दया और उदारता का कुछ ठिकाना है जो अपने घातक को भी पीड़ित नहीं देखना चाहते।

(10) पं. गुरूदत्त विद्यार्थी एम. ए. साइन्स के उच्च कोटि के विद्वान थे। स्वामी जी से अगाध प्रेम रखते थे। परन्तु दुर्भाग्य से उन्हें ईश्वर की सत्ता में विश्वास न था। स्वामी जी ने अनेक बार उनको समझाया। अन्त में गुरूदत्त ने कहा– "महाराज! मैं आपके तर्कों का खण्डन नहीं कर सकता। आपके प्रमाणों का भी प्रतिवादन नहीं कर सकता, परन्तु क्या कहूं अभी तक मेरे अन्तरात्मा ने स्वीकार नहीं किया है कि ईश्वर कोई सत्ता है! बात यहीं तक रह गई। जब स्वामी जी का अन्त समय आया और अजमेर में अनेक सज्जन स्वामी जी के अन्तिम दर्शन को गए उनमें पं. गुरूदत्त भी थे। स्वामी जी ने वैदिक यन्त्रालय के कर्मचारियों, वेद–भाष्य सेवकों और बाहर से आये हुए सज्जनों से आवश्यक बात कर ली और अब उन्हें सांसारिक कर्त्तव्य करना कुछ बाकी न रहा, तो सबसे कह दिया कि अब सब पीछे जाओ। सब पीछे चले गये, परन्तु पं. गुरूदत्त एक कोने में छिपकर इस प्रकार खड़े हो गये कि उनको तो स्वामी जी न देखे सकें परन्तु ये उनकी अन्तिम घटना को देख सकें। स्वामी जी मृत्यु–शैय्या पर बैठ जाते हैं और कुछ प्राणायाम करते हैं, फिर कुछ वेद–मन्त्रों का उच्चारण करते हैं। मन्त्रोच्चारण करते–करते एक साथ उनके मुखड़े पर मुस्कराहट आई। बस यह मुस्कुराहट क्या थी मानो एक समस्या थी जो पं. गुरुदत्त सोचता है कि घाव से जिसका सारा शरीर गल रहा हो, जिसे किसी प्रकार का सुख नहीं हो और जो जेलखाने में कैदी भी, पूछा जाय कि इन सारी आपत्तियों और कष्टों से छूटने के लिए क्या मरना चाहते हो? तो मरने का नाम सुनकर वह कानों पर हाथ रखता है मृत्यु इतनी भयावनी है। वह मृत्यु इस महान् पुरूष के सम्मुख उपस्थित है, परन्तु यह इस प्रकार मुस्करा रहा है मानो किसी बिछुड़े से मिलाप हो गया हो। स्वामी जी की यह मुस्कराहट क्या थी मानों एक विद्युत् थी जिसने पं. गुरूदत्त की उच्च श्रेणी का आस्तिक बना दिया। महान् पुरूषों का जीवन ही नहीं किन्तु मृत्यु भी शिक्षाप्रद होती है।

शिक्षा का उद्देश्य तथा रूप

सभी देशों के विचारक अत्यन्त प्राचीनकाल से यह बतलाते आये हैं कि शिक्षा का असली उद्देश्य मनुष्य के पूर्ण व्यक्तित्व का निर्माण करना है। पूर्ण व्यक्तित्व में मनुष्य के व्यक्तिगत और सामाजिक दोनों प्रकार के गुण आ जाते हैं। मनुष्य के शरीर, मन और आत्मा तीनों बलवान् हों, उसका चरित्र दृढ़ हो और वह अपने सामाजिक कर्तव्यों के पालन में तत्पर और समर्थ हो, तभी उसे पूर्ण व्यक्तित्व से युक्त मनुष्य कह सकते हैं। शिक्षा का यह उद्देश्य प्रायः सभी बड़े तत्त्ववेत्ताओं ने स्वीकार किया। कभी–कभी संकुचित आदर्श भी प्रस्तुत किये जाते रहे हैं। उन्नीसवीं सदी के प्रथम चरण में पश्चिम में आर्थिक युग का ऐसा गहरा प्रभाव हुआ था कि उसने विचारकों तक के दृष्टिकोण को बदल दिया था। उस युग ने नास्तिकता, उपयोगितावाद, विकासवाद आदि एकांगी वादों को जन्म देने के साथ–साथ शिक्षासम्बन्धी दृष्टिकोण को भी बदल दिया था। रोटी कमाने की योग्यता उत्पन्न करना शिक्षा का उद्देश्य माना जाने लगा था। वह दृष्टिकोण बहुत ही अशुद्ध था। चरित्रहीन मनुष्य यदि धन उत्पन्न करेगा तो जहां उसके धन उत्पन्न करने के साधन अन्याययुक्त और स्वार्थपूर्ण होंगे, वहां उस अर्थ का प्रयोग भी अपने लिए और समाज के लिए हानिकारक होगा। फलतः केवल अर्थकरी शिक्षा व्यक्ति और समाज के लिए विष के समान होगी। स्पष्ट है कि यदि व्यक्ति और जाति दोनों को बुराई और उससे उत्पन्न होनेवाले कष्टों से बचाना है तो शिक्षा का आदर्श ऊँचा होना चाहिए। शिक्षा का ऊँचा आदर्श यही है कि व्यक्ति के शरीर और मन को पूर्णरूप से विकसित करके उसे दृढ़, चरित्रवान्, ज्ञानवान् और समाज का उपयोगी अंग बनाया जाये। शिक्षणालय ऐसे स्थान पर हों जहां छात्र गन्दे प्रभावों से बचे रहें, शिक्षक लोग ऐसे हों जिनके जीवनों का छात्रों पर शोभन प्रभाव पड़े और पाठन प्रणाली ऐसी हो जिससे शरीर और बुद्धि का समानान्तर विकास हो। देश के भाग्यनिर्माताओं को सदा ध्यान रखना चाहिए कि आज जैसी शिक्षा दी जायेगी, कल जाति वैसी ही बन जायेगी।

शिक्षा का लक्षण मनुष्य को ज्ञान प्राप्त कराना है। ज्ञान वस्तुतः मनुष्य की आंख है। ज्ञान के बिना चर्मचक्षुओं के रहते हुए भी वह अन्धा है क्योंकि उसके सामने जो घातक बाधाएं आती हैं वे माथे में लगी हुई दो आंखों से दिखाई नहीं देतीं। उन्हें देखने के लिए बुद्धि चाहिए। जो शिक्षा सच्चे ज्ञान द्वारा बुद्धि को विकास नहीं करती वह मनुष्य की मित्र नहीं, शत्रु है।

अच्छी शिक्षा से सद्विद्या प्राप्त होती है, जो मनुष्य को ज्ञानरूपी चक्षु देकर जीवन का सन्मार्ग दिखाती है।

–इन्द्र विद्यावाचस्पति

ऋषि का एक सुन्दर स्वप्न

आर्य समाज क्या है?संक्षेप में उत्तर दें दिव्य अनुभूति एवं मानव विकास की चरम सीमा प्राप्त एक ऋषि हृदय का एक स्वप्न था। ऋषि हृदय की भावना व विचार के अतिरेक का सम्मिश्रण था। वे समस्त विश्व के कल्याण का चिन्तन कर रहे थे। मानव जाति के इतने पुण्य अर्जित नहीं थे कि वे सुदीर्घ काल तक इस धारा को सुवासित करते हुए मानव कल्याण के कार्यक्रम को पूर्ण कर जाते। फिर भी उन्होंने आर्य समाज की स्थापना कर दी, जिसका मुख्य लक्ष्य था "कृण्वन्तो विश्वमार्यम्'।

वास्तव में वे 'आर्यसमाज' के रूप में ही समग्र विश्व को देखना चाहते थे और इसके लिए आर्यसमाज की व्यवस्था वैदिक वर्णाश्रम व्यवस्था के अनुसार होना उनका मन्तव्य था। अतः आर्यसदस्य की आन्तरिक व्यवस्था वर्णाश्रम के अनुसार ही होनी चाहिए थी अर्थात् आर्यसमाज में प्रवेश लेने के समय ही आर्यसमाज का वर्ण उसके गुणकर्म स्वभाव के अनुसार निर्धारित कर दिया जाना चाहिए था, और तदनुसार समाज में उसका स्थान निश्चित कर दिया जाना चाहिए था और वर्णानुसार ही हमारी अर्थव्यवस्था (अर्थ रखने का अधिकार तथा अर्थवितरण की प्रणाली) भी होती।

इस प्रकार वैदिक समाज का एक जीवित जागृत उदाहरण आर्यसमाज के रूप में जनता के सामने आ जाता, जिसके आधार पर आगे चल कर विश्वभर के नागरिकों की समाज व्यवस्था की जा सकती और वैदिक वर्णाश्रम व्यवस्था की उपादेयता स्वयंसिद्ध हो जाती। वर्तमान समय में सामाजिक विशृंखलता का मूल कारण वर्ण सांकर्य ही है। वैदिक वर्णाश्रम के उपरोक्त क्रियात्मक रूप के द्वारा विश्व भर के सामने एक ऐसी समाज व्यवस्था स्पष्ट हो जाती जिसमें सामाजिक विषमताओं व विभीषिकाओं को कोई स्थान न होता जिनकी अग्नि में वर्तमान विश्व दुःखी व अशान्त हो रहा है और जन्मगत जाति व धन व इनसे उद्भूत समस्याओं का निराकरण तो स्वयंमेव हो जाता। इससे भारतीय लोकतंत्र में भी स्वच्छता व सुदृढ़ता आ जाती।

दूसरे वेदार्थ की दिशा में भी हमें क्रान्तिकारी मोड़ देना है वह यह कि वेद मंत्रों का सामान्य शब्दार्थ कर देने की अब तक की प्रचलित प्रणाली पूर्णतः सन्तोषजनक नहीं है। मन्त्रों की अनेकार्थता को प्रकाश में लाने की आवश्यकता है। इसके लिए मन्त्रार्थकर्ता को स्वभावतः एक दिशा अपनानी होगी और उसी दिशा में मत्रार्थ प्रतिपादन करना होगा। भिन्न–भिन्न व्यक्तियों की भिन्न रुचियाँ होती हैं, भिन्न–भिन्न अनुभव होते हैं तो जब विभिन्न व्यक्ति अपनी–अपनी रुचि व योग्यता के अनुसार एक ही मंत्र के विभिन्न अर्थ रखेंगे, तो वेद ज्ञान की विशालता का बोध होगा, तभी वेद से हम सच्चे रूप में लाभ भी उठा सकेंगे और तभी हमारा यह दावा कि वेद सब सत्य विद्याओं की पुस्तक है। सिद्ध भी होगा।

ऋषि दयानन्द ने अपने वेद भाष्यों में मंत्रों की अनेकार्थता का संकेत दिया है। उसकी सुस्पष्ट अभिव्यक्ति शेष है। इसी उपक्रम में वेदमन्त्रों के वैज्ञानिक अर्थ भी अपने आप सामने आ जाएँगे और वैज्ञानिक आधार पर प्रतिपादन से वेद समग्र विश्व की निधि स्वतः ही बन जायेगा। वेद ज्ञान की सार्वभौमिकता, सार्वकालिकता का हमारा दावा भी विश्व को मान्य हो जायगा।

विगत शताब्दी आर्यविचारों व मान्यताओं के प्रचार की शताब्दी थी। ईश दया से इसमें हम सफल हुए हैं। आज विश्व के प्रत्येक भाग में आर्यसमाज स्थापित हैं। दूसरी शताब्दी का आरम्भ हमने वैदिक वर्णाश्रम व्यवस्था की क्रियात्मकता तथा वेदार्थ की वैज्ञानिक व अनेकार्थता के साथ करना है, यही ऋषि का स्वप्न था जिसे आर्यों को पूरा करना है। विश्व पटल पर दुःख दैन्य व अशान्ति का नर्तन आर्यसमाज को, इस ऋषि स्वप्न को शीघ्र ही पूरा करने के लिए तीव्रतर आह्वान कर रहा है।

आर्यो! झिझको नहीं, बढ़े चलो!

मनुष्य एक भौतिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक प्राणी है!

– डा. जगदीश गाँधी,(लखनऊ)

(1) मनुष्य एक भौतिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक प्राणी है:–

जब से परमात्मा ने यह सृष्टि और मानव प्राणी बनाये तब से परमात्मा ने उसे उसकी तीन वास्तविकताओं (1) भौतिक (2) सामाजिक तथा (3) आध्यात्मिक के साथ एक संतुलित प्राणी के रूप में निर्मित किया है। परिवार, समाज तथा स्कूल तीनों मिलकर बालक को भौतिक व सांसारिक ज्ञान करा रहे हैं। जबकि परिवार, समाज तथा स्कूल तीनों को मिलकर बालक की तीनों वास्तविकताओं अर्थात भौतिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक का संतुलित विकास करना चाहिये तथा उसमें पवित्रता का गुण, दयालुता का गुण तथा ईश्वरीय प्रकाश से प्रकाशित होकर समाज में अच्छा आचरण करने के गुण विकसित करने चाहिये।

(2) विद्यालय रूपी तीर्थ–धाम के मंदिर रूपी कक्षाओं में ही मानव जाति का भाग्य गढ़ा जाता है :–

वैसे तो तीनों स्कूलों परिवार, समाज तथा विद्यालय के अच्छे–बुरे वातावरण का प्रभाव बालक के कोमल मन पर पड़ता है। लेकिन बालक के जीवन निर्माण में इन तीनों में से सबसे ज्यादा प्रभाव विद्यालय रूपी तीर्थ–धाम का पड़ता है क्योंकि स्कूल चार दीवारों वाला वह तीर्थ–धाम है जिसमें कल का भविष्य छिपा है। साथ ही सम्पूर्ण मानव जाति का भाग्य इसी तीर्थ–धाम के मंदिर रूपी क्लास रूम में गढ़ा जाता है। अतः यदि किसी तीरथ–धाम रूपी विद्यालय में भौतिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक तीनों गुणों से ओतप्रोत शिक्षक हों तो वह स्कूल के वातावरण को बदल कर प्रत्येक बालक के जीवन में प्रकाश भर सकता है। वह शिक्षक बच्चों को इतना पवित्र, महान तथा चरित्रवान बना सकता है कि ये बच्चे अपने मां–बाप को भी बदल कर समाज की बुराइयों से उन्हें बचा सकते हैं।

(3) बालक परमपिता परमात्मा की सर्वोच्च कृति है:–

विद्यालय रूपी तीर्थ धाम के मंदिर रूपी कक्षाओ में आज (अ) शुद्ध (ब) दयालु तथा (स) ईश्वरीय प्रकाश से प्रकाशित हृदय वाला नन्हा बालक 2–3 वर्ष की नन्ही सी अवस्था में शिक्षा ग्रहण करने के लिए आता है। इस समय तक बालक में मन–मस्तिष्क में किसी भी प्रकार के विकार का जन्म नहीं हुआ होता है। अतः शिक्षकों का यह प्रथम दायित्व बनता है कि वे विद्यालय रूपी तीरथ–धाम की पवित्रता को बनाये रखते हुए ईश्वर की सर्वोच्च कृति के रूप में पृथ्वी पर भेजे गये प्रत्येक बालक में व्याप्त ईश्वरीय गुणों का पूर्ण विकास कक्षा रूपी मंदिर में करके उसे एक सच्चा ईश्वर भक्त इंसान बनायें।

(4) प्रत्येक बालक को विश्व नागरिक बनायें :–

स्कूल ही समाज के प्रकाश का केन्द्र है। आधुनिक स्कूल की सामाजिक जिम्मेदारी है कि वह प्रत्येक बालक को वर्तमान सामाजिक आवश्यकता के अनुरूप (1) भौतिक, (2) सामाजिक तथा (3) आध्यात्मिक तीनों प्रकार की संतुलित एवं उद्देश्यपूर्ण शिक्षा देकर उसे इस युग के अनुरूप एक नई दिशा देने के लिए संतुलित विश्व नागरिक बनायें।

(4) मनुष्य को संतुलित, सुखी और समृद्ध बनाने में उद्देश्यपूर्ण शिक्षा सहायक होती है:–

श्री गोपाल कृष्ण गोखले, पं. मदन मोहन मालवीय, गुरुदेव रवीन्द्र नाथ टैगोर, डा. सर्वपल्ली राधाकृष्णन, डा. अम्बेडकर, अब्राहम लिंकन, मदर टेरेसा आदि ने अकेले ही सारे समाज को बदलने की मिसालें प्रस्तुत की हैं। एक अच्छा शिक्षक पहले प्रत्येक बालक के अन्तरिक गुणों को विकसित करके उन्हें नेक बनाता है फिर उसके बाह्य गुणों को विकसित करके उन्हें चुस्त भी बना देता है। प्रत्येक तीर्थ–धाम रूपी विद्यालय के प्रत्येक शिक्षक को बालक को इस धरती का प्रकाश तथा मानव जाति का गौरव बनाना चाहिए। ऐसे ही शिक्षकों के श्रेष्ठ मार्गदर्शन द्वारा धरती पर स्वर्ग अर्थात ईश्वरीय सभ्यता की स्थापना होगी। मानव सभ्यता के इस परम उद्देश्य को पाने के लिए हमारा एक ही संकल्प होना चाहिए – प्रभु काज किये बिना मुझे कहाँ विश्राम।

छत्रपति शिवाजी का राज्याभिषेक और व्यक्तित्व दर्शन

–प्रा. डा. चन्द्रशेखर लोखण्डे

छत्रपति शिवाजी महाराज द्वारा सन् 1659 में अफजल खाँ का वध और 1663 ई. के शाईस्ता खाँ की फजीहत किये जाने के पश्चात् मुगल बादशाह औरंगजेब बहुत ही क्रोधित हुआ और उसने मिर्जा राजा जयसिंह को शिवाजी को पराजित करने के लिए दक्षिण भेजा। राजा जयसिंह ने कूटनीति और धूर्तता से शिवाजी महाराज को मुगल बादशाह औरंगजेब को मिलने के लिए आगरा भेज दिया। औरंगजेब ने छल कपट कर शिवाजी को कैद कर दिया। 6 मास के उपरान्त छत्रपति शिवाजी बडी चालाकी और नाटकीय ढंग से आगरे से पलायन कर अपने स्वराज्य में लौट आये। इसके पश्चात् दो वर्षों तक स्वराज्य में शान्ति रही। औरंगजेब छत्रपति शिवाजी से संघर्ष करता हुआ थक चुका था। और इसी कारण निरुपाय होकर उसने शिवाजी को राजा की उपाधि प्रदान कर दी। औरंगजेब ने कहा था– "मेरे विरुद्ध जितने व्यक्तियों ने स्वतन्त्र राज्य स्थापित करने का प्रयास किया, उनमें से किसी को सफलता नहीं मिली। एक मात्र शिवाजी ही अपना स्वतंत्र राज्य स्थापित करने में सफल हो सका।"

इसके बाद छ. शिवाजी ने दुबारा संघर्ष कर वे किले लौटा लिए जिन्हें राजा जयसिंह ने उनसे अपहृत कर लिए थे। जब मुगल बादशाह की ओर से छ. शिवाजी को राजा का दर्जा दिया गया तो उन्होंने स्वयं को राजा सिद्ध करने के लिए राज्याभिषेक करने का निश्चय किया। उन्होंने काशी के गागाभट्ट को बुलवाया और उनके पौरोहित्य में राज्यसिंहासनारूढ होकर विधि पूर्वक राज्याभिषेक करवाया। इस तरह 6 जून 1674 को छत्रपति शिवाजी महाराज धर्मशास्त्र की आज्ञा और विधिविधान के अनुसार क्षत्रिय कुलावतंस, सिंहासनाधीश इन दो उपाधियों से अलंकृत होकर मराठा साम्राज्य के राजाधिपति बन गये। इस प्रकार छ. शिवाजी चारों ओर से मुगल साम्राज्य बीजापुर के सुल्तान, गोआ के पुर्तगालियों और जंजीरा स्थित अबी सानिया के समुद्री डाकुओं से घिरे होकर और प्रतिरोध के बावजूद उन्होंने दक्षिण पश्चिम महाराष्ट्र में एक स्वतन्त्र हिन्दू राज्य की स्थापना की। 6 वर्ष के पश्चात् जब 1680 ई. में उनकी मृत्यु हुई तब उनका राज्य बेलगाँव से लेकर तुंगभद्रा नदी के तट तक पश्चिमी कर्नाटक में फैला हुआ था।

तत्कालीन सूरत (गुजरात) का प्रेसिडेन्ट हेनरी ऑक्झेण्डेन 6 जून 1674 को छ. शिवाजी के राज्याभिषेक समारोह में उपस्थित था उसने महाराज को नजराना पेश करते हुए नजदीक से देखा था। वह लिखता है– "शिवाजी 47 वर्ष की उम्र के हैं वे अत्यंत सुन्दर और प्रभावशाली है। उनके साथ चर्चा करने से मालूम हुआ कि वे तीव्र बुद्धिमत्तावाले और चतुर वृत्ति के हैं। उनकी दृष्टि तेज, नाक सरल और बांकदार है।

कॅरे नामक फ्रेंच यात्री ने शिवाजी को महामानव कहा है।

पांडीचेरी का गवर्नर मार्दिन ने कहा था – "छत्रपति शिवाजी जैसा दूसरा नेता उस काल में नहीं हुआ है।"

छ. शिवाजी के बारे में इतिहासकार यदुनाथ सरकार लिखते हैं– "शिवाजी महाराज यथार्थ में व्यावहारिक आदर्शवादी थे, वे शेरशाह सूरी और रणजीत सिंह से भी महान थे तथा ओलिवर क्रामवेल और नेपोलियन से भी उनकी महानता की तुलना नहीं हो सकती, क्यों कि वे दोनों क्षुद्र अहंभाव से प्रेरित थे।"

तत्कालीन मुगल सल्तनत का ब्योरा लिखनेवाले खाफी खाँ "छ. शिवाजी के बारे में लिखता है– "शिवाजी ने यह निश्चय बना लिया था कि जब कभी उनके साथी लूट पाट करें, वे मस्जिद या किसी स्त्री को कोई हानि न पहुंचाये..... जब इनके सैनिक कुरान, हिन्दू या मुसलमान स्त्रियों को बन्दी बनाते तब वे स्वयं उनकी रखवाली करते थे।"

प्रसिद्ध इतिहासकार श्री महाजन कहते हैं– "शिवाजी केवल मराठा जाति के ही निर्माणकर्ता न थे, अपितु ते मध्यकालीन भारतवर्ष के निर्माणकर्ता थे।"

आपके पत्र

(पत्र जगत)

आदरणीय महोदय,

सन् 1923 में परम पूज्य स्वामी श्रद्धानंद जी द्वारा स्थापित भा. हिन्दू शुद्धि सभा का पत्र 'शुद्धि समाचार' मासिक का जून 2013 का प्रेरणादायी अंक प्राप्त हुआ। इस कृपा के लिए हम आपके बहुत आभारी हैं। कृपया इस अत्यन्त ही पुनीत सेवा कार्य के लिए हमारी ओर से ढेर सारी बधाइयाँ स्वीकार करने की कृपा करें। आत्मा अजर अमर है। परम पूज्य स्वामी श्रद्धानन्द जी तथा परम पूज्य पं. मदनमोहन मालवीय जी के लोक कल्याण की भावना से ओतप्रोत उनका महान बहुआयामी व्यक्तित्व, उनके कार्य एवं विचार मानव सेवा की राह पर सदैव मानव जाति का मार्गदर्शन युगों–युगों तक करते रहेंगे।

– डॉ. जगदीश गांधी लखनऊ

जीवन को सुखमय कैसे बनाएं?

–देवराज आर्यमित्र, नई दिल्ली

हम देखते हैं कि ईश्वर ने हमारे सुख के लिए जल वायु, सूर्य, चन्द्रमा, औषधियां, वनस्पतियां आदि सुविधाएं उत्पन्न करके यह सृष्टि (दुनिया) सुखमय बनायी है। फिर ये अनेक प्रकार के सुख क्यों आते हैं, जिनको हम भोग रहे हैं?

चिन्तन करने से आभास होता है कि मनुष्य कर्म करने में स्वतंत्र है, परन्तु वह भूल जाता है कि कर्मों का परिणाम (फल) भोगने में न्यायकारी ईश्वर के पूरी तरह अधीन है। खोटे, कुकर्मों के द्वारा दुखों को वह स्वयं निमंत्रण देता है। कष्ट आने पर भी सही रास्ते पर नहीं चलता। अज्ञानता के अन्धकार में तांत्रिकों के जाल में फंसकर भटकता रहता है। स्वार्थ की संकीर्णता में जकड़ा रहता है। विषय–वासनाओं की कीचड़ में अपने–आप को क्षीण, हीन बना लेता है। मनुष्य जीवन को दूषित करके पशु–पक्षियों की तरह मर जाते हैं। क्या मनुष्य–जीवन का यही लक्ष्य है कि हम आजीवन घेरे में रहकर कष्ट भोगते हुए दुनिया से चले जाएं? नहीं, यह सर्वश्रेष्ठ चोला मनुष्य को आनन्द (मोक्ष) प्राप्त करने के लिए मिला है। सोचिए, ऐसा कौन–सा प्राणी है, जो सुख, आराम नहीं चाहता। चींटी से हाथी तक समस्त प्राणीजगत सुख प्राप्त करने के लिए इधर से उधर घूम रहा है। मनुष्य भी अपनी बुद्धि का प्रयोग अधिक से अधिक सुख प्राप्त करने के लिए कर रहा है, परन्तु थोड़े क्षण भर सुख के लिए अन्य प्राणियों को नष्ट कर रहा है। फिर तो सुख की बजाय दुःख का पहाड़ सामने आ जाता है। इन दुःखों से बचाने के लिए हमारे तपस्वी ऋषि–मुनियों ने अनेक उपाय बताकर हमारा मार्गदर्शन किया है। मेरा अनुभव है कि यदि हम जीवन में प्रतिदिन ये संकल्प करें, तो हमारा जीवन सुख से व्यतीत होगा– (1) मैं असत्य को छोड़कर सत्य को ग्रहण करके उसका पालन करूंगा, (2) परिश्रम और पुरुषार्थ से धन उपार्जन करूंगा। छल कपट और झूठ का व्यवहार नहीं करूंगा, (3) ईर्ष्या, द्वेष की अग्नि से बचता रहूंगा, (4) क्रोध में आकर किसी को गन्दे, कटुवचन नहीं बोलूंगा, (5) आत्मिक उन्नति के लिए संध्या–स्वाध्याय करता रहूंगा, (6) स्वाध्याय का ध्यान रखते हुए आहार–विहार में कुपथ्य नहीं करूगां, (7) अपनी प्रसन्नता के लिए यथासंभव परोपकार के काम करूंगा, (8) अपने गुरुजनों की सेवा–समान करके आशीर्वाद लेता रहूंगा।

विस्तार भय से बचने के लिए संक्षिप्त में कुछ बातें लिखी हैं। यह सफल और स्वस्थ जीवन का नुस्खा (योग) है। कोई पैसा–रूपया खर्च नहीं होता। इसका प्रयोग करके देख लो। बातें और भी हैं, जैसे–चिन्ता की बजाय चिन्तन करो, भागदौड़ करने के बाद भी आपका कोई काम नहीं बनता है, तो धैर्य रखो, हिम्मत मत हारो। किसी ने आपका अपमान कर दिया है, तो तनाव में आकर बदले की भावना से अपना संतुलन मत बिगाड़ो। जीवन में काफी रगड़ा खाने के बाद मुझे प्रकाश की किरणें मिली हैं, इसलिए ये सब बातें लिखी हैं।

जीवन और अग्नि

–स्व. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी

मेरा जीवन यज्ञ कुण्ड है, अग्नि प्रणव है अग्नि कर्म है।
अग्नि स्वयं ऋषि और मन्त्र है, जलना, जीना यही धर्म है।

शुद्ध साधना अग्नि तपस है, अग्नि व्यथा है, संवेदन है।
अग्नि न्याय का ओजस् तेजस्, अग्नि सृष्टि का प्रतिवेदन है।

अग्नि पुरोहित अग्नि ब्रह्मा है, विद्या परा और अपरा है।
अग्नि सृष्टि का चेतन जीवन, अग्नि व्योम है अग्नि धरा है।

अग्नि आज है कल भी होगी, अग्नि अद्यतन, अग्नि पुरातन।
अग्नि अस्मिता का प्रमाण है, अग्नि सदा है, अग्नि सनातन।

अग्नि शौर्य है, अग्नि समर्पण, अग्नि प्रीति है अग्नि सरस है।
अग्नि शक्ति है, अग्नि साधना, अग्नि स्वर्ण है, अग्नि निकष है।

पावक पुण्य प्रकोप सदा से, अग्नि शस्त्र है अग्नि शास्त्र है।
अग्नि सिद्धि है, पूजा भी है, परमेश्वर का कृपा मात्र है।

नैनीताल हाईकोर्ट के आदेशानुसार विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार के कुलाधिपति का निर्वाचन सम्पन्न

प्रसिद्ध वैदिक विद्वान, शिक्षाविद्, कर्मठ आर्य नेता, राज्यसभा सांसद

डॉ रामप्रकाश जी कुलाधिपति निर्वाचित

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी के अनन्य शिष्य स्वामी श्रद्धानन्द जी द्वारा लगभग 110 वर्ष पूर्व स्थापित आर्यसमाज की सर्वोच्च शिक्षण संस्था "गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय" जिसका संचालन आर्य प्रनिनिध सभा पंजाब, आर्य प्रतिनिध सभा हरियाणा एवं दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा के संयुक्त तत्त्वावधान में किया जाता है, के कुलाधिपति के रूप में सुप्रसिद्ध वैदिक विद्वान्, विचारक, लेखक, राज्य सभा के सांसद डॉ. रामप्रकाश जी को निर्वाचित घोषित किया गया। निर्वाचन नैनीताल हाई कोर्ट के आदेश दिनांक 31 अक्तूबर, 2012 के आलोक में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा नियुक्त निर्वाचन अधिकारी एवं भारतीय निर्वाचन आयोग के पूर्व सचिव श्री हरबंस सिंह जी की अध्यक्षता एवं देखरेख में नई दिल्ली स्थित विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के कार्यालय में दिनांक 20 मई, 2013 को प्रातः 11 बजे सम्पन्न हुआ। दिनांक 14 मई, 2013 को दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान ब्र. राजसिंह आर्य एवं आर्य प्रतिनिधि सभा हरियाणा के प्रधान आचार्य विजयपाल जी ने कुलाधिपति हेतु डॉ. रामप्रकाश जी का नाम प्रस्तुत किया था। अन्य कोई नाम न आने के कारण निर्विरोध रूप से आगामी 5 वर्षों के लिए डॉ. रामप्रकाश जी को गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय का कुलाधिपति निर्वाचित घोषित किया गया।

इस अवसर पर आयोजित समारोह में बोलते हुए डॉ. रामप्रकाश ने कहा– "शिक्षा का स्तर सम्पूर्ण भारत में अधोगति को चला गया है, गुरुकुल ही नहीं दिल्ली विश्वविद्यालय का नाम विश्व के टॉप 200 विश्व विद्यालयों की सूची में कहीं नहीं आता।" उन्होंने कहा कि भारत के विश्वविद्यालयों में से किसी का भी नाम एशिया के विश्वविद्यालयों में नहीं आता, यह दुर्भाग्यपूर्ण है। उन्होंने आगे कहा कि आज श्रेष्ठ शोध कार्यों की कमी है। जब तक कि शोध पत्र अन्तर्राष्ट्रीय पत्रिका में न छपे और उसे अन्य विद्वानों द्वारा उद्धत न किया जाए वह शोध कार्य नहीं कहा जा सकता। उन्होंने बड़े स्पष्ट शब्दों में कहा कि केवल कागज काले करने से शोध कार्य नहीं हो जाता। उन्होंने कहा कि सभी शोधार्थियों के लिए आवश्यक है कि वे अपने कार्य स्थल पर कार्य करें, ताकि नव शोध हो सके।

उन्होंने कहा कि विश्वविद्यालय की उन्नति के लिए तीनों आर्य प्रतिनिधि सभाओं और समस्त शिक्षक, शिक्षकेत्तर कर्मचारियों को मिलकर कार्य करना होगा। उन्होंने कहा कि हमारे मतभेद तो हो सकते हैं किन्तु मनभेद नहीं होने चाहिए। उन्होंने स्पष्ट कहा कि हमें महर्षि दयानन्द और स्वामी श्रद्धानन्द जी के मार्गदर्शन में कार्य कर आर्य सिद्धान्तों का पालन करना चाहिए। गुरुकुल में अंग्रेजी तो हो लेकिन वैदिक संस्कृति पर अंग्रेजी हावी न हो। मैं खुले दिन से गुरुकुल में आया हूँ। गुरुकुल की उन्नति के लिए मैं कुछ कर सकूं तभी मेरा कुलाधिपति बनना सार्थक होगा। उन्होंने कहा हमें अपने तन और मन दोनों स्वस्थ करने होंगे।

संवाददाता सम्मेलन को सम्बोधित करते हुए नव निर्वाचित कुलाधिपति डॉ. रामप्रकाश ने कहा कि वह सबसे पहले विश्वविद्यालय के खराब हो चुके सिस्टम को सुधारेंगे। उन्होंने कहा अब तक हुई अनियमितताओं की जानकारी मिलने के बाद दोषियों पर कार्यवाई की जाएगी। उन्होंने आगे कहा गुरुकुल की समस्त भूमि एवं अन्य सम्पत्तियों की रक्षा करने में वह कोई कसर बाकी नहीं छोड़ेंगे। उन्होंने कहा कि विश्वविद्यालय के पुराने हो चुके पाठ्यक्रम को एक्सपर्ट के माध्यम से रिवाइज कराकर सुधार किया जाएगा और नए पाठ्यक्रमों को शुरु कराने पर जोर दिया जाएगा।

इस अवसर पर सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान आचार्य बलदेव जी ने कहा कि डॉ. रामप्रकाश आर्यसमाज के समर्पित कार्यकर्ता हैं, हमेशा गौरक्षा आदि आन्दोलनों में आगे रहे हैं वे गुरुकुल को आगे ले जाएंगे।

दिल्ली आर्य प्रतिनिध सभा के प्रधान ब्र. राजसिंह आर्य जी ने कहा कि दिल्ली, हरियाणा और पंजाब सभा के प्रधानों ने एक मत से डॉ. रामप्रकाश की नियुक्ति की है। हमें गुरुकुल विश्वविद्यालय को तो आगे ले जाना ही है साथ ही कांगड़ी ग्राम स्थित पुण्यभूमि का पुनरुद्धार भी करना है। हम वहां आर्य समाज के ऐसे धर्मोपदेशक तैयार करेंगे जो पूरे विश्व में आर्य पताका फहराएंगे। उन्होंने कहा कि हमें सब प्रकार के मन–मुटाव दूर कर सकारात्मक रूप से कार्य करना है।

–विनय आर्य, महामन्त्री, दिल्ली आर्य प्रतिनिध सभा

R.N.I. No. 43084/76 Posting Date : 2-3 Every Month Delhi Postal R.No. DL (N) 060/2012-14

सेवा में,

शुद्धि समाचार

जुलाई – 2013

124 ईसाई भाई बहनों की घर वापसी

जब-जब वैदिक संस्कृति का ह्रास होता है तब-तब मतान्धता बढ़ती है, और विधर्मी बन मानव-मानव न रहकर पैशाचिक प्रवृत्ति फंसकर एक-दूसरे का रक्त पिपासु हो जाता है इसी प्रकार ईसाइयत की काली छाया में वर्षों से जीवन यापन कर रहे ग्राम रिहानया निवासी जब प्रणव शास्त्री के सम्पर्क में आये तो उनका जीवन ही नहीं बदला बल्कि शुद्ध वैदिक धर्मी बन पक्के राष्ट्र धर्म संस्कृति के अनुयायी बने। यहाँ मिशनरियाँ अपने प्रचारकों द्वारा सीधे-साधे ग्रामीणों को बहला फुसलाकर बपतिस्मा देकर उनका मानसिक शोषण करती रही हैं।

प्रणव शास्त्री के अनथक प्रयास ने यहाँ कायाकल्प का कार्य किया, बड़ों को सत्यार्थ प्रकाश एवं बच्चों को बाल (लधु) सत्यार्थ प्रकाश की प्रतियाँ दी हैं। जनवरी 2013 से मई तक पाँच माह के अन्तराल में पूरे ग्राम के 26 परिवारों के 113 स्त्री पुरूष बच्चों ने यज्ञ में आहुति से पूर्व यज्ञोपवीत धारण किया पुनः आहुति दी बड़ी श्रद्धा एवं शालीनता के साथ यह पवित्र कार्य स्वामी विश्वमुनि के ब्रह्मत्व में सम्पन्न हुआ।

शुद्धि यज्ञ के पुरोहित प्रणव शास्त्री ने सबको वैदिकधर्मी बनाते हुए सभी संस्कार वैदिक रीति से कराने का संकल्प कराया।

इस अवसर पर वेद मुनि शान्ति मुनि राम प्रकाश आर्य ने धर्मोपदेश दिया एवं ओम पाल सिंह, जीवाराम, सेवाराम, कविता, सोभा, स्नेह, रेशमा, गीता, रेखा बीरपाल सोहनलाल आदि उपस्थित रहें। अन्त में शान्ति पाठ के उपरान्त प्रसाद वितरण किया गया। पुनः सभी ने मिलकर भोज (भण्डारा) का स्वाद लिया सम्पूर्ण कार्यक्रम शुद्धि यज्ञ के पुरोहित एवं शुद्धि सभा के प्रचारक पं. प्रणव शास्त्री के निदेशन में किया गया।

1.6.2013 ग्राम सिताब नगर बरेली में एक ही परिवार के 11 (ग्यारह) सदस्यों ने ज्ञान देव आर्य व रामशेवर दयाल आर्य के सहयोग से प्रणव शास्त्री के उपदेशानुसार वैदिक धर्म की दीक्षा ली।

यज्ञ के साथ सबने पवित्र वेदमन्त्रों के साथ आहुति डाली और व्रतलिया।

–प्रचारक प्रणव शास्त्री

गुरु ब्रह्मानन्द आश्रम बणी पूण्डरी में वार्षिक आर्य मानव निर्माण शिविर का समापन एवं स्वामी शिवानन्द सरस्वती जी गौतम नगर आर्य समाज दादरी का सम्मान

गुरु ब्रह्मानन्द आश्रम बणी पूण्डरी (कैथल) हरियाणा में 2 जून 2013 से 9 जून 2013 तक चल रहे आर्य मानव निर्माण शिविर का समापन आनन्दमय वातावरण में सम्पन्न हुआ।

इस आठ दिवसीय शिविर में राज्य भर से 150 बच्चों ने भाग लिया। देश भर से पधारे विद्वानों ने बच्चों का प्राचीन वैदिक संस्कृति के परिचय करवाया। लाठी, जुड़ो कराटे, आसन व्यायाम आदि का अभ्यास बच्चों को करवाया गया। यज्ञ योग सन्ध्या आदि का महत्व भी बच्चों का शिक्षकों द्वारा समझाया गया।

शिविर के अन्तिम दिन गुरु ब्रह्मानन्द सरस्वती जी के उत्तराधिकारी शिष्य स्वामी बलेश्वरानन्द सरस्वती जी ने राष्ट्र सेवा के लिये स्वामी शिवानन्द सरस्वती जी को गुरु ब्रह्मानन्द सम्मान से सम्मानित किया। सम्मान में स्वामी जी द्वारा स्वामी शिवानन्द को पगड़ी, शाल अभिनन्दन पत्र व 51000 इक्यावन हजार रूपये प्रदान किये गए समस्त कार्यक्रम का संयोजन राजपाल सिंह (बहादुर) ने किया व इस पावन बेला में- महात्मा दयानन्द सरस्वती, आचार्य चद्रदेव आर्य वीरदल के प्रचार मंत्री, क्षेत्र के विधायक सुल्तान जड़ौला, आर्य युवक समाज के प्रधान धर्म देव विधार्थी, मुख्य व्यायाम शिक्षक सन्दीप आर्य, मन्दीप आर्य, अक्षपाल एवं सन्दीप आर्य प्रधान आर्य समाज बरसाना मौजुद थे।

–रामपाल सिंह

माह जून–2013 के आर्थिक सहयोगी

आर्य समाज विशाखा एन्कलेव उत्तरी पीतमपुरा दिल्ली	त्रैमासिक	4500/–
श्रीमती स्वतन्त्रलता शर्मा जी प्रधान, आर्य समाज इन्द्रानगर,बैंगलुरु	त्रैमासिक	1000/–
आर्य समाज इन्द्रानगर, बगलुरु (कर्नाटक)	मासिक	1000/–
आर्य समाज अनारकली मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली	मासिक	1000/–
ब्रिगेडियर के.पी. गुप्ता जी, सैक्टर–15, फरीदाबाद	मासिक	1000/–
श्री नरेन्द्र मोहन वलेचा जी महामंत्री, शुद्धि समाज	मासिक	500/–
श्री वी.के. गुप्त जी, डी.डी.ए. फ्लैटस मुनिरिका, नई दिल्ली	मासिक	500/–
कुमारी ईशा गुप्ता जी, डी.डी.ए. फ्लैटस मुनिरिका, नई दिल्ली	मासिक	300/–
श्रीमती पुष्पा कपूर जी, राजेन्द्र नगर, नई दिल्ली		200/–
श्री आर.एस. शर्मा जी, इन्दिरा नगर, गाजियाबाद	मासिक	150/–
श्रीमती उमा बजाज जी, आर्य समाज राजेन्द्र नगर, नई दिल्ली	मासिक	100/–
सुश्री वेद मदान जी, डबल स्टोरी, न्यू राजेन्द्र नगर, नई दिल्ली	मासिक	100/–
श्री प्रेम लाल जी, आर्य समाज राजेन्द्र नगर, नई दिल्ली	मासिक	100/–
श्री जयन्त बल्लम दास कोटेचा, पोरबन्दर गुजरात	मासिक	100/–
श्री सूर्यप्रताप जी, बी–ब्लाक, नीति बाग, नई दिल्ली		100/–

श्री देवराज अरोड़ा जी (फरीदाबाद) द्वारा एकत्रित दान राशि

श्री मदन लाल जी तनेजा, सैक्टर–16, फरीदाबाद	त्रैमासिक	675/–
श्री विजय अरोड़ा जी, सैक्टर–16, फरीदाबाद	त्रैमासिक	300/–
श्री संजय अरोड़ा जी, सैक्टर–16, फरीदाबाद	त्रैमासिक	225/–
श्री अजय अरोड़ा जी, सैक्टर–16, फरीदाबाद	त्रैमासिक	225/–
श्री देवराज अरोड़ा जी, सैक्टर–16, फरीदाबाद	त्रैमासिक	225/–
श्रीमती ऊर्मिल जी, कीर्तिनगर, नई दिल्ली	त्रैमासिक	300/–
श्री मदन छाबड़ा जी, मालवीय नगर, नई दिल्ली	त्रैमासिक	300/–
श्री वेद प्रकाश जी, रोहिणी, नई दिल्ली	त्रैमासिक	300/–
श्री सुभाष अरोड़ा जी, सैक्टर–16, फरीदाबाद	त्रैमासिक	225/–
श्री कृष्ण टुटेजा जी, सैक्टर–16, फरीदाबाद	त्रैमासिक	150/–
श्री सुरेश जी भारत आप्टीकल्स, फरीदाबाद	त्रैमासिक	150/–
श्री पवन अग्रवाल जी, सैक्टर–16, फरीदाबाद	त्रैमासिक	150/–

श्री सत्य प्रकाश आर्य जी द्वारा एकत्रित दान राशि

आर्य समाज विशाखा एन्कलेव, उत्तरी पीतमपुरा दिल्ली	त्रैमासिक	4500/–
श्री कस्तूरीलाल वीर जी, प्रेम नगर (आर्यभवन) करनाल हरि.	त्रैमासिक	600/–
श्री सतपाल जी, मिल्क डेरी वाले, हैदरपुर, नई दिल्ली		500/–
श्री मुकेश कुमार आर्य–सदस्य आर्य समाज विशाखा एन्कलेव	त्रैमासिक	300/–
श्रीमती सुशीला चावला जी, पीतमपुरा, दिल्ली		200/–
श्री जगमोहन वालिया जी, पीतमपुरा, दिल्ली		100/–
श्रीमती सरला खुराना जी, नीलकण्ठ अपार्ट. रोहिणी, नई दिल्ली		100/–
श्री विजय उप्पल जी, पीतमपुरा, दिल्ली		100/–
श्री सुशील घई जी, पीतमपुरा, दिल्ली		100/–
श्री सत्य प्रकाश आर्य जी प्रधान आर्य समाज विशाखा एन्कलेव		100/–
डॉ. हंसराज आर्य जी, सदस्य आर्य समाज विशाखा एन्कलेव		101/–

श्री चन्द्रभान चौधरी जी द्वारा एकत्रित दान राशि

कुमारी गरिमा जी, बी–2, पश्चिम विहार, नई दिल्ली		1000/– मासिक
श्रीमती चन्द्रकला राजपाल जी, पश्चिम विहार, नई दिल्ली		500/– मासिक
श्री मन्वेन्द्र गुलाटी जी, विकासपुरी, नई दिल्ली		700/–
श्रीमती राज सचदेवा जी, जीजी–2, विकासपुरी, नई दिल्ली		240/–
श्री ब्रजलाल जी सहगल, कृष्णा पुरी, तिलक नगर, नई दिल्ली		100/–
श्री आई. डी. वधवा जी, न्यू कृष्णा पार्क, नई दिल्ली		50/– मासिक
डा. पुष्पलता वर्मा जी, प्रधान–आर्य समाज विकासपुरी, नई दिल्ली		50/– मासिक
श्रीमती ऊषा कुकरेजा जी, विकासपुरी, नई दिल्ली		50/– मासिक
श्रीमती संतोष कोछड़ जी, विकासपुरी, नई दिल्ली		50/– मासिक
श्री सुखदेव महाजन जी, विकासपुरी, नई दिल्ली		50/– मासिक
श्री कर्मवीर मनचंदा जी, विकासपुरी, नई दिल्ली		50/–
श्री सुधीर पाहुजा जी, असन्द कुंज, विकासपुरी	वार्षिक सदस्य	50/–
श्री भूटानी जी, गुरु कृष्ण नगर, विकासपुरी,	वार्षिक सदस्य	50/–

आर्य समाज विशाखा एन्कलेव उ. पीतमपुरा दिल्ली का निर्वाचन

प्रधान	–	श्री रणसिंह राणा
मंत्री	–	श्री ओमप्रकाश गुप्ता
कोषाध्यक्ष	–	श्री एस. पी. डुडेजा

मुद्रक, व प्रकाशक – रामनाथ सहगल द्वारा गुरमत प्रिंटिंग प्रेस, 1337, संगतरासन, पहाड़ गंज, नई दिल्ली–55 दूरभाष : 23561625, से मुद्रित एवं भारतीय हिन्दू शुद्धि सभा, 6949, बिड़ला लाइन दिल्ली–7 दूरभाष : 23847244 से प्रकाशित। सम्पादक : डा. भारद्वाज पाण्डेय